अच्छा हिन्दू बनने के लिए अच्छा जैनी बनना आवश्यक है

—श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

मैं हिन्दू हूँ। ईश्वर की सत्ता में विश्वास करता हूँ—कम से कम मेरी परम्परा ने मुझे यही विश्वास दिया है। पर मैं हृदय से जैनधर्म का भक्त भी हूँ। मुझसे प्रायः मेरे साहित्यिक तथा राजनैतिक मित्र पूछते हैं कि मैं जैनमत पर इतना आसक्त क्यों हूँ, और जब उसे इतना मानता हूँ तो जैनी क्यों नहीं हो जाता।

प्रश्न अच्छा है। और मेरा उत्तर भी बुरा नहीं है। मेरा विश्वास है कि बिना हिन्दू बने जैनी श्रेष्ठ जैनी बन सकता है, पर बिना जैन आचार संहिता को अपनाये मैं अच्छा हिन्दू नहीं बन सकता। हमने जैन धर्म से उसका अध्यात्मवाद लेकर अपने विशाल धर्म को विशालतम बना लिया है। जैनियों ने हमसे कर्मकाण्ड लेकर अपने को कुछ बहुत आगे बढ़ाया, ऐसा मैं नहीं मानता। अच्छे हाथों में पड़कर कर्मकाण्ड हमें कल्याण की ओर ले जाता है, पर जरा सी त्रुटि से तथा नादानी से उसमें उलझकर मनुष्य ऊपर उठने के बजाय नीचे दुबका रहता है। ठीक वैसे ही जैसे वास्तविक तंत्र-शास्त्र की गरिमा को पशु-तांत्रिकों ने पतन का साधन बना दिया—चाहे हिन्दू तान्त्रिक हों, बौद्ध या जैनी तान्त्रिक हों।

जैन परम्परा के विशाल विज्ञान की बात अलग रख दीजिए। केवल भगवान् महावीर की तीन बातें अगर हम पकड़ लें तो आज का अनर्थमय संसार कितना बदल सकता है। भगवान महावीर ने कहा है कि कर्म में पूर्ण अनासक्ति हो, चित्त में राग-द्वेष लेशमात्र भी न हो, और वह परम शान्त हो। परिग्रह की भावना पूर्णतः समाप्त हो जाय। आज संसार का एकमात्र रोग है परिग्रह—जो जितना नोच सके, लूट सके, प्राप्त कर सके, उतना भी उसे कम प्रतीत होता है। आज की परिग्राह की भावना से ही सब राग-द्वेष-कुकर्म-अशान्ति पैदा हैं, बढ़ रही हैं। पर हम रातों-दिन घड़ी-घन्टा बजाकर देवता को प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं और जिन बातों से देवता, हमारे मन के भीतर बैठा देवता, प्रसन्न हो सकता है, उसके प्रति नितान्त उदासीन हैं। तब फिर हिन्दू होते हुए भी हमें क्या मिला ? क्या हम आवागमन, पुनर्जन्म, संसार के रोग-व्याधि से लेशमात्र भी ऊपर उठ सके हैं ?

कूर्म पुराण में कथा है कि दैत्य की सेना को जीतने वाली सौ देवियां ईश का दर्शन करने की इच्छा से जब शंकर भगवान के सामने आईं तो उनका अद्भुत रूप देखकर उन्होंने उनसे पूछा कि आप कौन हैं ? शंकर ने उत्तर दिया—

अहं हि निष्क्रियः शान्तः केवलो निष्परिग्रहः। (कूर्म १/१५/१५४)

"मैं निष्क्रिय, शान्त, अद्वितीय तथा परिग्रह शून्य हूँ।"

Scanned with OKEN Scanner

वीतराग भगवान महावीर के अद्वितीय शान्त, निष्क्रिय रूप में तथा उपर्युक्त वर्णन में क्या अन्तर है ? वीतराग ने तपश्चर्या द्वारा पापक्षय तथा कर्म-क्षय की बात सिखलाई थी। वीतिहोत्र नामक पौराणिक राजा की कथा तो प्रसिद्ध है कि उसने अपने पाप का क्षय करने के लिए बारह-वर्ष तक कन्दमूल का सेवन किया तथा बारह वर्षों तक केवल वायु का भक्षण किया, तब उसके पापों का क्षय हुआ। यदि हम अपने पाप का क्षय करने के लिए केवल देवता के आशीर्वाद के भरोसे बैठे रहें तो क्या कभी उसका क्षय हो सकता है।

बड़े से बड़े महापुरुष तथा उच्च से उच्च आत्माएं कर्म का, संस्कार का क्षय कष्ट भोग कर करते हैं। रामकृष्ण परमहंस को बार-बार उनके इष्ट का साक्षात्कार होता था, पर उन्होंने स्वयं अपने शिष्यों से कहा था कि अपने संस्कार का क्षय करने के लिए ही वे गले के कैंसर के अत्यधिक पीड़ामय रोग को भोग रहे हैं। महर्षि रमण को कैंसर रोग ने वर्षों तक कष्ट देकर प्राण लिया। तपस्वी अरविन्द जब रोग शैय्या पर पड़े थे तो उनके शिष्यों ने उनसे पूछा कि आप अपने को स्वस्थ क्यों नहीं कर लेते ? उन्होंने भी उत्तर दिया था कि संस्कार के क्षय के लिए कष्ट सहन की तपस्या अनिवार्य है।

अहिंसा और अस्तेय इन दो बातों पर जैन धर्म बहुत बल देता है। विष्णु पुराण (३१९/२४-३३), गरुड पुराण (१/१०२/१-६), अग्नि पुराण (१६१/१-३१), पद्म पुराण (१/१५/३४८-३९२) तथा भागवत् (७/१३/१-४६), में यति का जो धर्म बतलाया गया है, वे भगवान महावीर के ही अहिंसा तथा अस्तेय का प्रतिपादन करते हैं। कूर्म ने यहाँ तक लिखा है—

स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति स्मृतः।
हिंसा चैषापरा दिष्टा या चात्माज्ञाननाशिका॥ (२/२९/३०)

चोरी से बढ़कर और कोई अधर्म नहीं है। चोरी आत्मज्ञान को नष्ट करने वाली दूसरी हिंसा कही गयी है। अमरकोश के अनुसार हिंसा का अर्थ है 'चौर्यादि कर्म—

हिंसा चैव न कर्तव्या वैधहिंसा तु राजसी।
ब्राह्मणैः सा न कर्तव्या यतस्ते सात्विका मताः॥

हलायुध कोश के अनुसार 'धर्म' का अर्थ है 'सुकृत, न्याय, आचार, सत्संग तथा अहिंसा।' हम हिन्दू कैसे अपने को धर्मात्मा कह सकते हैं यदि हम हिंसक हैं, यदि हम सत्कर्म नहीं करते, यदि हमारा आचरण ठीक नहीं है। यदि हम न तो सत्संग करते हैं और न हम न्यायपूर्ण जीवन बिताते हैं, हम अपने को हिन्दू कह सकते हैं पर हम धार्मिक व्यक्ति हैं, यह झूठ होगा।

मैं इन्हीं मोटी बातों को पकड़कर कहता हूँ कि बिना अच्छा जैनी हुए मैं अच्छा हिन्दू नहीं बन सकता। जैन धर्म के आचार्यों ने किसी भी धर्म का खण्डन-मण्डन करके अपने को ऊँचा, साबित करने का प्रयास भी नहीं किया। मैं यहां स्याद्वाद या अनेकान्तवाद पर न जाकर केवल जैन आचार्यों की निष्पक्ष विचारधारा की ओर संकेत करना चाहता हूँ। आचार्य हेमचन्द्र ने स्पष्ट लिखा है कि "हमने जो कुछ लिखा है वह पक्षपात वश या द्वेष भाव से नहीं। केवल श्रद्धा के कारण, न आपके प्रति, हे वीर ! हमारा कोई पक्षपात है और न द्वेष के कारण अन्य देवताओं में अविश्वास है, किन्तु, यथार्थ रूप में आप की परीक्षा करके ही हमने आपका आश्रय लिया है।"

न श्रद्धयैव त्वयि, पक्षपातो न द्वेषमात्रादरुचिः परेषु।
यथावदाप्तत्वपरीक्षया तु त्वामेव वीर प्रभुमाश्रिताः स्मः॥

कोई झगड़े की बात तो जैनधर्म कहता भी नहीं। जैन परम्परा केवल एक धुरी पर घूमती रही है। वह धुरी केवल एक लक्ष्य है—अनन्त ज्ञान। जिसे वह प्राप्त हो गया, उसे सब कुछ मिल गया। आचारांग सूत्र ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है—

Scanned with OKEN Scanner

जे एगं जाणइ, ये सव्वं जाणइ ।
जे सव्वं जाणइ से एगं जाणई ।।

उसी ने कहा है—

एको भाव: सर्वथा येन दृष्ट: सर्वे भावा सर्वथा तेन दृष्टा: ।
सर्वे भावा: सर्वथा येन दृष्टा: एको भाव: सर्वथा तेन दृष्ट: ।।

—(प्र. श्रुतस्कंध, ३ अ., ४ उ., १२२)

ऐसा कौन हिन्दू है जो आत्म-तत्व के ज्ञान को गौण समझे ? न्यायकोष के अनुसार—

शुद्धात्मतत्वविज्ञानं सांख्यमित्यभिधीयते ।

सांख्यकारिका के भाष्यकार ने कहा है—

वृक्षान् छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रूधिर कर्दम् ।
यद्येवं गम्यते स्वर्गं नरके केन गम्यते ।। (२-माठर भाष्य)

आचार्य हरिभद्र ने अपने 'योगदृष्टि समुच्चय' में जिस सुन्दरता के साथ योग के महत्व का प्रतिपादन किया है वह हरेक हिन्दू के लिए अनमोल है। योग का अर्थ प्राय: ध्यान है। जैन दर्शन के अनुसार बिना ध्यान के ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। हेमचन्द्र ने 'योग शास्त्र' में तथा योगविजयसूरि ने 'द्वात्रिंशिका' में पंतजलि, योग-वशिष्ट तथा तैत्तिरीय उपनिषद् की यौगिक क्रियाएं भी दी हैं। हिन्दू ग्रन्थ 'योगसार' ने जो लिखा है वह जैनी भी स्वीकार करेंगे। धर्म का लक्षण ही प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा तथा स्मरण (जैनी सामायिक) है। योग-सार के अनुसार—

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
स्मरणं चैव योगेऽस्मिन् पञ्च धर्मा: प्रकीर्तिता: ।।

फिर जब इतना मेल है जैन तथा हिन्दू विचारधारा में, तो हिन्दू जैनी से भेदभाव क्यों करें ? वह मूर्खता का युग तो चला गया जब हम जैनी मन्दिर में जाना भी पाप समझते थे। वह मूर्खता तो समाप्त हुई। पर दूसरी मूर्खता भी समाप्त होनी चाहिए कि हम एक दूसरे को भिन्न समझें। जैन धर्म नास्तिक नहीं है। जीव की सत्ता में विश्वास करने वाला नास्तिक हो नहीं सकता। झगड़ा इतना ही है कि एक ही आत्मा सब में व्याप्त है या सब आत्मा अलग-अलग हैं। जब हम निश्चय रूप से नहीं कह सकते कि ईश्वर है तो कैसे निश्चित रूप से कह दें कि आत्मा एक है।

सन्त कबीर ने कहा है—

मारी कहूँ तो बहु डरूँ, हल्का कहूं तो झूठ ।
मैं का जानूं राम को, नैना कबहूं न दीठ ।।

जैनधर्म कहता है कि आशा-निराशा के चक्कर में न पड़ो। निष्क्रिय—निराश न होकर आगे बढ़ो। यही बात तो अष्टावक्र अपनी गीता में कह गये हैं कि जो आशा के दास होते हैं, वे दुनिया भर के दास हो जाते हैं। जो आशा को दासी बना लेते हैं वे संसार के स्वामी बन जाते हैं—

आशाया ये दासास्ते दासा: सर्वलोकस्य ।
आशा येषां दासी तेषां दासायते लोक: ।।

अस्तु, मेरा तात्पर्य केवल इतना ही है कि हमने जैन धर्म को समझने की चेष्टा नहीं की। इसीलिए हम अच्छे हिन्दू नहीं बन पा रहे हैं।

Scanned with OKEN Scanner